18

नाखून क्यों बढ़ते हैं?

आपने देखा होगा कि बरसात के बाद बगीचे में घास-पतवार बहुत बढ़ जाती है। बरसात समाप्त होते ही माली उसे काट-छाँटकर सही रूप प्रदान करता है। अगर माली घास न काटे, तो सोचिए बगीचे का क्या हो? उसमें हमारा चलना-फिरना भी दूभर हो जाए। है न ऐसा ही!

इसी तरह, हमारे मन में भी अच्छे विचार तो आते ही हैं पर उनके साथ-साथ कभी-कभी बुरे विचारों की खर-पतवार उग आती है, जिसे काटकर हम अपने मन को शुद्ध और सुसंस्कृत बनाते हैं। इसे ही मन को संस्कारित करना कहते हैं। यह मनुष्यता का आदर्श भी है। आइए, इस पाठ के माध्यम से हम इन्हीं बातों को समझने का प्रयास करें।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप—

- मनुष्य द्वारा पशुता को दबाने के लिए किए गए प्रयासों का उल्लेख कर सकेंगे;
- संयम और अनुशासन जैसे गुणों का महत्त्व स्पष्ट कर सकेंगे;
- परिस्थितियों के अनुसार उचित और अनुचित का भेद समझकर उनका वर्णन कर सकेंगे;
- मानव-सभ्यता के क्रमिक विकास के संदर्भ में मानवीय प्रवृत्तियों का विश्लेषण कर सकेंगे;
- समस्या के विविध पहलुओं पर विचार करके समाधान के तरीकों का उल्लेख कर सकेंगे;
- सफलता और सार्थकता में अंतर स्पष्ट कर सकेंगे।

टिप्पणी

18.1 मूल पाठ

नाखून क्यों बढ़ते हैं?

बच्चे कभी-कभी चक्कर में डाल देने वाले प्रश्न कर बैठते हैं। अल्पज्ञ पिता बड़ा दयनीय जीव होता है। मेरी छोटी लड़की ने जब उस दिन पूछ दिया कि आदमी के नाखून क्यों बढ़ते हैं, तो मैं कुछ सोच ही नहीं सका। हर तीसरे दिन नाखून बढ़ जाते हैं, बच्चे कुछ दिन तक अगर उन्हें बढ़ने दें, तो माँ-बाप अक्सर उन्हें डाँटा करते हैं। पर कोई नहीं जानता कि ये अभागे नाखून क्यों इस प्रकार बढ़ा करते हैं। काट दीजिए, वे चुपचाप दंड स्वीकार कर लेंगे; पर निर्लज्ज अपराधी की भाँति फिर छूटते ही सेंध पर हाज़िर! आख़िर ये इतने बेहया क्यों हैं?

कुछ लाख ही वर्षों की बात है, जब मनुष्य जंगली था; वनमानुष जैसा। उसे नाखून की ज़रूरत थी। उसकी जीवन-रक्षा के लिए नाखून बहुत ज़रूरी थे। असल में वही उसके अस्त्र थे। दाँत भी थे, पर नाखून के बाद ही उनका स्थान था। उन दिनों उसे जूझना पड़ता था, प्रतिद्वंदियों को पछाड़ना पड़ता था, नाखून उसके लिए आवश्यक अंग था। फिर धीरे-धीरे वह अपने अंग से बाहर की वस्तुओं का सहारा लेने लगा। पत्थर के ढेले और पेड़ की डालें काम में लाने लगा (रामचंद्र जी की वानरी सेना के पास ऐसे ही अस्त्र थे)। उसने हड्डियों के भी हथियार बनाये। इन हड्डी के हथियारों में सबसे मज़बूत और सबसे ऐतिहासिक था- देवताओं के राजा का वज्र, जो दधीचि मुनि की हड्डियों से बना था। मनुष्य और आगे बढ़ा। उसने धातु के हथियार बनाये। जिनके पास लोहे के अस्त्र और शस्त्र थे, वे विजयी हुए। देवताओं के राजा तक को मनुष्यों के राजा से इसलिए सहायता लेनी पड़ती थी कि मनुष्यों के राजा के पास लोहे के अस्त्र थे। असुरों के पास अनेक विद्याएँ थीं, पर लोहे के अस्त्र नहीं थे, शायद घोड़े भी नहीं थे। आर्यों के पास ये दोनों चीज़ें थीं। आर्य विजयी हुए। फिर इतिहास अपनी गति से बढ़ता गया। नाग हारे, सुपर्ण हारे, यक्ष हारे, गंधर्व हारे, असुर हारे, राक्षस हारे। लोहे के अस्त्रों ने बाज़ी मार ली। इतिहास आगे बढ़ा। पलीते वाली बंदूकों ने, कारतूसों ने, तोपों ने, बमों ने, बमवर्षक वायुयानों ने इतिहास को किस कीचड़-भरे घाट तक घसीटा है, यह सबको मालूम है। नख-धर मनुष्य एटम-बम पर भरोसा करके आगे की ओर चल पड़ा है। पर उसके नाखून अब भी बढ़ रहे हैं। अब भी प्रकृति मनुष्य को उसके भीतर वाले अस्त्र से वंचित नहीं कर रही है, आज भी वह याद दिला देती है कि तुम्हारे नाखून को भुलाया नहीं जा सकता। तुम वही लाखों वर्ष पहले के नखदंतावलंबी जीव हो—पशु के साथ एक ही सतह पर विचरने वाले, चरने वाले।

ततः किम्! मैं हैरान होकर सोचता हूँ कि मनुष्य आज अपने बच्चों को नाखून न काटने के लिए डाँटता है। किसी दिन—कुछ थोड़े लाख वर्ष पूर्व—वह अपने बच्चों को नाखून नष्ट करने पर डाँटता रहा होगा। लेकिन, प्रकृति है कि वह अब भी नाखून को जिलाए जा रही है और मनुष्य है कि वह अब भी उसे काटे जा रहा है। वे कमबख्त रोज़ बढ़ते

शब्दार्थ

अल्पज्ञ – कम जानने वाला

दयनीय – दया के योग्य, कमज़ोर

दंड – सज़ा

निर्लज्ज – लज्जा रहित, बेशर्म

सेंध – चोरी के लिए दीवार में किया गया छेद

बेहया – बेशर्म, निर्लज्ज

अस्त्र – हथियार

प्रतिद्वंद्वी – सामने आकर लड़ने वाला या विरोध करने वाला, मुकाबला करने वाला

देवताओं के राजा – इंद्र

वज्र – दधीचि की हड्डियों से बना इंद्र का अस्त्र

पलीता – बारूद लगी हुई डोरी

नखधर – नाखून वाला

वंचित – रहित

नखदंतावलंबी – नाखून और दाँत पर निर्भर रहने वाला

ततः किम् – तो क्या (तब क्या, फिर क्या)

हैं, क्योंकि वे अंधे हैं, नहीं जानते कि मनुष्य को इससे कोटि-कोटि गुना शक्तिशाली हथियार मिल चुका है। मुझे ऐसा लगता है कि मनुष्य अब नाखून को नहीं चाहता। उसके भीतर बर्बर-युग का कोई अवशेष रह जाय, यह उसे असह्य है। लेकिन यह कैसे कहूँ। नाखून काटने से क्या होता है? मनुष्य की बर्बरता घटी कहाँ है, वह तो बढ़ती जा रही है। मनुष्य के इतिहास में हिरोशिमा का हत्याकांड बार-बार थोड़े ही हुआ है? यह तो उसका नवीन रूप है! मैं मनुष्य के नाखून की ओर देखता हूँ, तो कभी-कभी निराश हो जाता हूँ। ये उसकी भयंकर पाशवी वृत्ति के जीवंत प्रतीक हैं। मनुष्य की पशुता को जितनी बार काट दो, वह मरना नहीं जानती।

चित्र 18.1

कुछ हज़ार साल पहले मनुष्य ने नाखून को सुकुमार विनोदों के लिए उपयोग में लाना शुरु किया था। वात्स्यायन के 'कामसूत्र' से पता चलता है कि आज से दो हज़ार वर्ष पहले का भारतवासी नाखूनों को जम के सँवारता था। उनके काटने की कला काफ़ी मनोरंजक बतायी गयी है। त्रिकोण, वर्तुलाकार, चंद्राकार, दंतुल आदि विविध आकृतियों के नाखून उन दिनों विलासी नागरिकों के न जाने किस काम आया करते थे। उनको सिक्थक (मोम) और अलक्तक (आलता)से यत्नपूर्वक रगड़ कर लाल और चिकना बनाया जाता था। गौड़ देश के लोग उन दिनों बड़े-बड़े नखों को पसंद करते थे और दाक्षिणात्य लोग छोटे नखों को। अपनी-अपनी रुचि है, देश की भी और काल की भी। लेकिन, समस्त अधोगामिनी वृत्तियों को और नीचे खींचने वाली वस्तुओं को भारतवर्ष ने मनुष्योचित बनाया है, यह बात चाहूँ भी तो भूल नहीं सकता।

चित्र 18.2

मानव-शरीर का अध्ययन करने वाले प्राणि-विज्ञानियों का निश्चित मत है कि मानव-चित्त की भाँति मानव-शरीर में भी बहुत-सी अभ्यासजन्य सहज वृत्तियाँ रह गई हैं। दीर्घकाल तक उनकी आवश्यकता रही है। अतएव शरीर ने अपने भीतर एक ऐसा गुण पैदा कर लिया है कि वे वृत्तियाँ अनायास ही, और शरीर के अनजान में भी, अपने-आप

टिप्पणी

कोटि–कोटि – करोड़ों

बर्बर युग – जंगली युग, सभ्यता पूर्व युग

अवशेष – बचा हुआ

पाशवी वृत्ति – जानवरों जैसी भावना

जीवंत – जीते-जागते, आनंदपूर्ण

विनोद – आनंद

वर्तुलाकार – गोल

दंतुल – दाँत के आकार का

विलासी – सुख-सुविधा में जीने वाला

गौड़ देश – बंगाल का एक भाग

दाक्षिणात्य – दक्षिण के निवासी

अधोगामिनी – नीचे जाने वाली

मनुष्योचित – मनुष्य के लिए उपयुक्त, मानवीय

टिप्पणी

काम करती हैं। नाखून का बढ़ना उसमें से एक है, केश का बढ़ना दूसरा है, दाँत का दुबारा उठना तीसरा है, पलकों का गिरना चौथा है। और असल में सहजात वृत्तियाँ अनजान की स्मृतियों को ही कहते हैं। हमारी भाषा में भी इसके उदाहरण मिलते हैं। अगर आदमी अपने शरीर की, मन की और वाक् की अनायास घटने वाली वृत्तियों के विषय में विचार करे, तो उसे अपनी वास्तविक प्रवृत्ति पहचानने में बहुत सहायता मिले। पर कौन सोचता है? सोचना तो क्या, उसे इतना भी पता नहीं चलता कि उसके भीतर नख बढ़ा लेने की जो सहजात वृत्ति है, वह उसके पशुत्व का प्रमाण है। उन्हें काटने की जो प्रवृत्ति है, वह उसकी मनुष्यता की निशानी है और यद्यपि पशुत्व के चिह्न उसके भीतर रह गए हैं, पर वह पशुत्व को छोड़ चुका है। पशु बनकर वह आगे नहीं बढ़ सकता। उसे कोई और रास्ता खोजना चाहिए। अस्त्र बढ़ाने की प्रवृत्ति मनुष्यता की विरोधिनी है।

सहजात वृत्तियाँ – जन्म के साथ उत्पन्न होने वाली विशेषताएँ या गुण

स्मृति – याद

वाक् – बोलना, वाणी, भाषा

निर्बोध – मासूम

व्यवहृत – व्यवहार या कार्य में लाई गई

अनुवर्तिता – पीछे चलने का भाव, अनुकरण

मेरा मन पूछता है—किस ओर? मनुष्य किस ओर बढ़ रहा है? पशुता की ओर या मनुष्यता की ओर? अस्त्र बढ़ाने की ओर या अस्त्र काटने की ओर? मेरी निर्बोध बालिका ने मानो मनुष्य-जाति से ही प्रश्न किया है—जानते हो, नाखून क्यों बढ़ते हैं? यह हमारी पशुता के अवशेष हैं। मैं भी पूछता हूँ—जानते हो, ये अस्त्र-शस्त्र क्यों बढ़ रहे हैं?—ये हमारी पशुता की निशानी हैं। भारतीय भाषाओं में प्रायः ही अंग्रेज़ी के 'इन्डिपेन्डेन्स' शब्द का समानार्थक शब्द नहीं व्यवहृत होता। 15 अगस्त को जब अंग्रेज़ी भाषा के पत्र 'इन्डिपेन्डेन्स' की घोषणा कर रहे थे, देशी भाषा के पत्र 'स्वाधीनता दिवस' की चर्चा कर रहे थे। 'इन्डिपेन्डेन्स' का अर्थ है- अनधीनता या किसी की अधीनता का अभाव, पर 'स्वाधीनता' शब्द का अर्थ है अपने ही अधीन रहना। अंग्रेज़ी में कहना हो, तो 'सेल्फ़डिपेन्डेन्स' कह सकते हैं। मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि इतने दिनों तक अंग्रेज़ी की अनुवर्तिता करने के बाद भी भारतवर्ष 'इन्डिपेन्डेन्स' को अनधीनता क्यों नहीं कह सका? उसने अपनी आज़ादी के जितने भी नामकरण किए—स्वतंत्रता, स्वराज्य, स्वाधीनता—उन सबमें 'स्व' का बंधन अवश्य रखा। यह क्या संयोग की बात है या हमारी समूची परंपरा ही अनजान में, हमारी भाषा के द्वारा प्रकट होती रही है? मुझे प्राणि-विज्ञानी की बात फिर याद आती है—सहजात वृत्ति अनजानी स्मृतियों का ही नाम है। स्वराज होने के बाद स्वभावतः ही हमारे नेता और विचारशील नागरिक सोचने लगे हैं कि इस देश को सच्चे अर्थ में सुखी कैसे बनाया जाय। हमारे देश के लोग पहली बार यह सब सोचने लगे हों, ऐसी बात नहीं है। हमारा इतिहास बहुत पुराना है, हमारे शास्त्रों में इस समस्या को नाना भावों और नाना पहलुओं से विचारा गया है। हम कोई नौसिखुए नहीं हैं, जो रातों-रात अनजान जंगल में पहुँचाकर अरक्षित छोड़ दिए गए हों। हमारी परंपरा महिमामयी, उत्तराधिकार विपुल और संस्कार उज्ज्वल हैं। हमारे अनजान में भी ये बातें हमें एक ख़ास दिशा में सोचने की प्रेरणा देती हैं। यह ज़रूर है कि परिस्थितियाँ बदल गयी हैं। उपकरण नये हो गये हैं और उलझनों की मात्रा भी बहुत बढ़ गयी है, पर मूल समस्याएँ बहुत अधिक नहीं बदली हैं। भारतीय चित्त जो आज भी 'अनधीनता' के रूप में न सोचकर 'स्वाधीनता' के रूप में सोचता है, वह हमारे दीर्घकालीन संस्कारों का फल है। वह 'स्व' के बंधन को आसानी से नहीं छोड़ सकता।

अपने आप पर अपने-आपके द्वारा लगाया हुआ बंधन हमारी संस्कृति की बड़ी भारी विशेषता है। मैं ऐसा तो नहीं मानता कि जो कुछ हमारा पुराना है, जो कुछ हमारा विशेष है, उससे हम चिपटे ही रहें। पुराने का 'मोह' सब समय वांछनीय ही नहीं होता। मरे बच्चे को गोद में दबाये रहने वाली 'बंदरिया' मनुष्य का आदर्श नहीं बन सकती। परंतु मैं ऐसा भी नहीं सोच सकता कि हम नई अनुसंधित्सा के नशे में चूर होकर अपना सरबस खो दें। कालिदास ने कहा था कि सब पुराने अच्छे नहीं होते, सब नए ख़राब ही नहीं होते। भले लोग दोनों की जाँच कर लेते हैं, जो हितकर होता है, उसे ग्रहण करते हैं, और मूढ़ लोग दूसरों के इशारे पर भटकते रहते हैं। सो, हमें परीक्षा करके हितकर बात सोच लेनी होगी और अगर हमारे पूर्व संचित भंडार में वह हितकर वस्तु निकल आए, तो इससे बढ़कर और क्या हो सकता है?

जातियाँ इस देश में अनेक आई हैं। लड़ती-झगड़ती भी रही हैं, फिर प्रेम-पूर्वक बस भी गयी हैं। सभ्यता की नाना सीढ़ियों पर खड़ी और नाना ओर मुख करके चलने वाली इन जातियों के लिए एक सामान्य धर्म खोज निकालना कोई सहज बात नहीं थी। भारतवर्ष के ऋषियों ने अनेक प्रकार से इस समस्या को सुलझाने की कोशिश की थी। पर एक बात उन्होंने लक्ष्य की थी। समस्त वर्णों और समस्त जातियों का एक सामान्य आदर्श भी है। वह है– अपने ही बंधनों से अपने को बाँधना। मनुष्य पशु से किस बात में भिन्न है आहार-निद्रा आदि पशु-सुलभ स्वभाव उसके ठीक वैसे ही हैं, जैसे अन्य प्राणियों के। लेकिन वह फिर भी पशु से भिन्न है। उसमें संयम है, दूसरे के सुख-दुःख के प्रति समवेदना है, श्रद्धा है, तप है, त्याग है। ये मनुष्य के स्वयं के उद्भावित बंधन हैं। इसीलिए मनुष्य झगड़े-टन्टे को अपना आदर्श नहीं मानता, गुस्से में आकर चढ़ दौड़ने वाले अविवेकी को बुरा समझता है एवं वचन, मन एवं शरीर से किए गए असत्याचरण को गलत आचरण मानता है। यह किसी भी जाति या वर्ण या समुदाय का धर्म नहीं है, यह मनुष्य मात्र का धर्म है। 'महाभारत' में इसीलिए निर्वैर भाव, सत्य और अक्रोध को सब वर्णों का सामान्य धर्म कहा है।

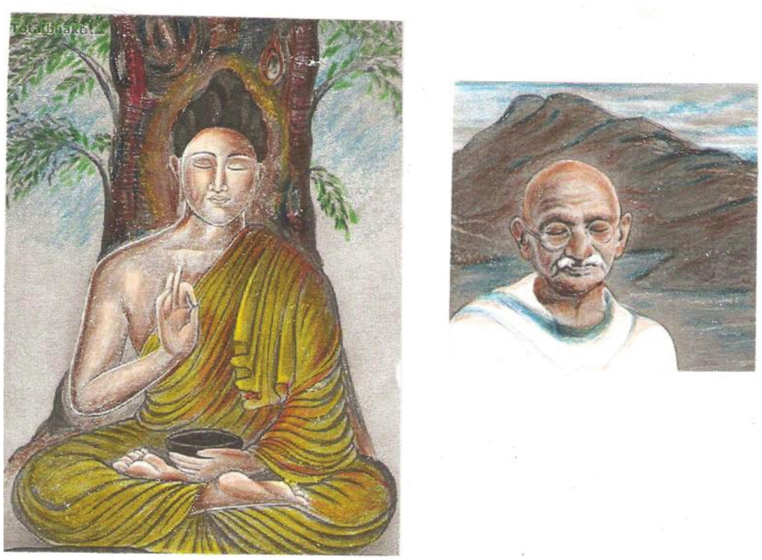

चित्र 18.3

टिप्पणी

नौसिखुए – किसी विषय को सीख रहे

अरक्षित – असुरक्षित

उत्तराधिकार – विरासत से प्राप्त अधिकार

विपुल – अधिक मात्रा में

उज्ज्वल– उजला

दीर्घकालीन – लंबे समय के

वांछनीय – चाहा हुआ, इच्छित

अनुसंधित्सा – खोजने की ललक, अनुसंधान की इच्छा

सरबस – सर्वस्व, सब कुछ

मूढ़ – मूर्ख

हितकर – कल्याणकारी

पूर्वसंचित – पहले से संग्रहीत, पहले से इकट्ठे किए

नाना – अनेक प्रकार के

वर्ण – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र – ये विभाजन

संयम – आत्म-नियंत्रण, आत्म-अनुशासन

उद्भावित – प्रकट

अविवेकी – सही-गलत की पहचान न रखने वाला

नाखून क्यों बढ़ते हैं?

गौतम ने ठीक ही कहा था कि मनुष्य की मनुष्यता यही है कि वह सबके दुख-सुख को सहानुभूति के साथ देखता है। यह आत्म-निर्मित बंधन ही मनुष्य को मनुष्य बनाता है। अहिंसा, सत्य और अक्रोधमूलक धर्म का मूल उत्स यही है। मुझे आश्चर्य होता है कि अनजाने में भी हमारी भाषा में यह भाव कैसे रह गया है! लेकिन, मुझे नाखून के बढ़ने पर आश्चर्य हुआ था। अज्ञान सर्वत्र आदमी को पछाड़ता है। और आदमी है कि सदा उससे लोहा लेने को कमर कसे है।

मनुष्य को सुख कैसे मिलेगा? बड़े-बड़े नेता कहते हैं– वस्तुओं की कमी है, और मशीन बैठाओ, और उत्पादन बढ़ाओ, और धन की वृद्धि करो, और बाह्य उपकरणों की ताकत बढ़ाओ। एक बूढ़ा था। उसने कहा था—बाहर नहीं, भीतर की ओर देखो। हिंसा को मन से दूर करो, मिथ्या को हटाओ, क्रोध और द्वेष को दूर करो, लोक के लिए कष्ट सहो, आराम की बात मत सोचो, प्रेम की बात सोचो; आत्म-तोषण की बात सोचो, काम करने की बात सोचो। उसने कहा—प्रेम ही बड़ी चीज़ है, क्योंकि वह हमारे भीतर है। उच्छृंखलता पशु की प्रवृत्ति है, 'स्व' का बंधन मनुष्य का स्वभाव है। बूढ़े की बात अच्छी लगी या नहीं, पता नहीं। उसे गोली मार दी गई; आदमी के नाखून बढ़ने की प्रवृत्ति ही हावी हुई। मैं हैरान होकर सोचता हूँ—बूढ़े ने कितनी गहराई में पैठकर मनुष्य की वास्तविक चरितार्थता का पता लगाया था।

ऐसा कोई दिन आ सकता है, जबकि मनुष्य के नाखूनों का बढ़ना बंद हो जाएगा। प्राणि-शास्त्रियों का ऐसा अनुमान है कि मनुष्य का अनावश्यक अंग उसी प्रकार झड़ जाएगा, जिस प्रकार उसकी पूँछ झड़ गयी है। उस दिन मनुष्य की पशुता भी लुप्त हो जाएगी। शायद उस दिन वह मारणास्त्रों का प्रयोग भी बंद कर देगा। तब तक इस बात से छोटे बच्चों को परिचित करा देना वांछनीय जान पड़ता है कि नाखून का बढ़ना मनुष्य के भीतर की पशुता की निशानी है और उसे नहीं बढ़ने देना मनुष्य की अपनी इच्छा है, अपना आदर्श है। बृहत्तर जीवन में अस्त्र-शस्त्रों को बढ़ने देना मनुष्य की पशुता की निशानी है और उनकी बाढ़ को रोकना मनुष्यत्व का तकाज़ा है। मनुष्य में जो घृणा है, जो अनायास—बिना सिखाये—आ जाती है, वह पशुत्व की द्योतक है और अपने को संयत रखना, दूसरे के मनोभावों का आदर करना मनुष्य का स्वधर्म है। बच्चे यह जानें तो अच्छा हो कि अभ्यास और तप से प्राप्त वस्तुएँ मनुष्य की महिमा को सूचित करती हैं।

सफलता और चरितार्थता में अंतर है। मनुष्य मारणास्त्रों के संचयन से, बाह्य उपकरणों के बाहुल्य से उस वस्तु को पा भी सकता है, जिसे उसने बड़े आडम्बर के साथ सफलता का नाम दे रखा है। परंतु मनुष्य की चरितार्थता प्रेम में है, मैत्री में है, त्याग में है, अपने को सबके मंगल के

चित्र 18.4

- आत्म-निर्मित – स्वयं द्वारा बनाया हुआ
- उत्स – मूल
- लोहा लेना – सामना या मुकाबला करना
- कमर कसना – तैयार होना
- मिथ्या – झूठ
- द्वेष – वैर भाव
- आत्म-तोषण – अपनी संतुष्टि
- उच्छृंखलता – मनमानापन
- पैठकर – गहराई में जाकर
- चरितार्थता – सार्थकता
- लुप्त होना – ख़त्म होना, गायब होना
- मारणास्त्र – मारने वाले/विनाशकारी हथियार
- बृहत्तर – व्यापक
- तकाज़ा – माँग (यहाँ ज़रूरत)
- अनायास – बिना प्रयास के
- द्योतक – सूचक
- संयत – नियंत्रित
- महिमा – महत्त्व, बड़प्पन
- संचयन – संग्रह
- बाहुल्य – अधिकता
- आडंबर – ढोंग, दिखावा
- मंगल – कल्याण, भलाई
- निःशेष – कुछ भी शेष न बचे, संपूर्ण

लिए निःशेष भाव से दे देने में है। नाखूनों का बढ़ना मनुष्य की उस अंध सहजात वृत्ति का परिणाम है, जो उसके जीवन में सफलता ले आना चाहती है, उसको काट देना उस स्व-निर्धारित, आत्म-बन्धन का फल है, जो उसे चरितार्थता की ओर ले जाता है।

नाखून बढ़ते हैं तो बढ़ें, मनुष्य उन्हें बढ़ने नहीं देगा।

–हजारी प्रसाद द्विवेदी

बोध प्रश्न

सर्वाधिक उपयुक्त विकल्प चुनकर पूछे गए प्रश्नों के उत्तर दीजिए :

1. कुछ लाख वर्ष पूर्व नाखून मनुष्य के लिए क्या थे?
   - (क) उपयोगी हथियार ☐ (ख) सौंदर्य के प्रतीक ☐
   - (ग) मनुष्यता की पहचान ☐ (घ) अनावश्यक अंग ☐
2. 'स्वाधीनता' शब्द का अर्थ है–
   - (क) अनधीनता ☐ (ख) उच्छृंखलता ☐
   - (ग) अपनी अधीनता ☐ (घ) मुक्ति ☐
3. पशुता से आशय है–
   - (क) पशु की विशेषता ☐ (ख) पशु का व्यवहार ☐
   - (ग) पशु के प्रति दृष्टिकोण ☐ (घ) बुरी प्रवृत्तियाँ ☐

18.2 आइए समझें

आपने यह पाठ पढ़ा? बहुत रोचक है यह पाठ। जानते हैं क्यों? क्योंकि इस पाठ का आरंभ एक मासूम बच्ची की ऐसी जिज्ञासा से हुआ है, जिसका हमसे भी संबंध है। नाखून हमारे भी बढ़ते हैं, हम भी उन्हें निरंतर काटते रहते हैं। बच्ची के प्रश्न का उत्तर ढूँढने के प्रयास में लेखक ने मनुष्यता की विकास–प्रक्रिया का और मनुष्यता तथा पशुता के संघर्ष को हमारे सामने प्रस्तुत कर दिया है।

इस पाठ को ठीक से समझने के लिए इसे पाँच अंशों में बाँटा गया है।

18.2.1 अंश–1

बच्चे कभी-कभी चक्कर में................. नहीं जानती।

आइए, पाठ के पहले अंश को फिर से पढ़ते हैं। इस अंश में निबंधकार ने बच्ची की ऐसी जिज्ञासा को सामने रखा है जिसका समाधान तुरंत करना मुश्किल है। लेखक बच्ची के

प्रश्न के उत्तर के रूप में एक विचार–प्रक्रिया से गुजरता है और उसे हमारे सामने प्रस्तुत करता है। वह कुछ लाखों वर्ष पूर्व की बात करता है, जब नाखून मनुष्य की जीवन–रक्षा के उपाय थे– वे उसके लिए अनिवार्य थे। धीरे–धीरे ये अनेक प्रकार के हथियारों के विकसित होने से मनुष्य में बर्बरता के चिह्न के रूप में बच गए। आज के समय में लेखक ने इन्हें भयंकर पशुता की प्रवृति के रूप में देखा है।

क्या आपने कभी सोचा है कि आज से लाखों साल पहले आदिम युग में जब मनुष्य और पशु में बहुत अंतर नहीं था, आदमी धरती पर कैसे रहता होगा? वह भी जानवरों की तरह गुफ़ाओं में रहता होगा। पेड़ों से फल तोड़कर खाता होगा। झगड़ा होने पर जीवन–रक्षा के लिए नाखूनों से, दाँतों से दूसरों पर हमला करता होगा। किसी समय नाखून हथियार की तरह काम आते थे। तब नाखून बढ़ाना मनुष्य की ज़रूरत रही होगी। दाँत भोजन को काटने के लिए ही नहीं, एक-दूसरे को काटने के काम भी आते होंगे। फिर धीरे-धीरे आदमी ने अपने शरीर के अंगों के अतिरिक्त बाहरी चीज़ों की सहायता लेनी शुरू की। पेड़ की डालें, टहनियाँ, छोटे-बड़े पत्थर उसके हथियार बने। 'रामायण' में राम की वानर-सेना ने भी रावण की सेना पर पेड़ की डालों, पत्थरों से हमला किया था। अपने दाँतों और नाखूनों से भी राक्षसी सेना को नोचने का काम किया था। धीरे-धीरे इंसान ने हड्डियों से हथियार बनाने आरम्भ किए। महर्षि दधीचि ने अपनी हड्डियों का दान दिया था। उन हड्डियों से देवताओं ने वज्र नामक एक अस्त्र बनाया, जिससे देवताओं के राजा इंद्र ने वृत्रासुर का वध किया था। हड्डियों से बने हथियार बहुत मज़बूत होते थे।

लेकिन आदमी को चैन कहाँ? द्विवेदी जी कहते हैं कि मनुष्य ने लोहे से हथियार बनाने शुरू किए। तीर जिनके अगले भाग पर नुकीला लोहा लगा होता था; भारी गदा; तलवार; कृपाण आदि अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण किया। पुराणों में ऐसा वर्णन आया है कि धातु के इन्हीं हथियारों के कारण देवता भी आदमी के पास सहायता माँगने आते थे। अनार्यों (यानी जो आर्य नहीं थे) के पास शायद प्रशिक्षित घोड़े और धातु के हथियार नहीं थे। आर्य जाति ने इनको बहुत विकसित कर लिया था। इसलिए उनकी जीत होती रही। इस प्रकार नाग, सुपर्ण, यक्ष, गंधर्व, असुर, राक्षस–सभी जातियाँ आर्यों से हारती चली गईं। इतिहास आगे बढ़ता गया और मनुष्य ने नए-नए हथियार बनाना सीख लिया। अपने हवाई जहाज़ों से वह दुश्मन देशों पर बम गिराने लगा, जैसे द्वितीय विश्वयुद्ध में अमेरिका ने जापान के हिरोशिमा और नागासाकी नगरों पर बम गिराकर लाखों लोगों को मौत के घाट उतार दिया था। आज भी पूरा विश्व इस घटना को याद करके सहम जाता है। आप समझ ही गए होंगे कि एक समय जहाँ जीवन–रक्षा के लिए नाखून काम आते थे अब उनकी जगह आधुनिक हथियारों ने ले ली है। अब ये दूसरों पर प्रभुत्व जमाने, शोषण करने के साधन बन गए। इन हथियारों के बल पर मनुष्य ने मनुष्यता पर कलंक लगाया है, उसे पशुता से ऊपर नहीं उठने दिया है। उसके नाखून उसे याद दिला रहे हैं कि जब तक हथियारों के बल पर दूसरों का नाश करते रहोगे तब तक तुम विकसित मनुष्य नहीं निरे पशु ही रहोगे और हम बार-बार बढ़कर तुम्हें यह याद दिलाते रहेंगे।

नाखून बढ़ जाएँ तो माता-पिता या बड़े-बुजुर्ग कितनी बार नाखून काटने के लिए टोकते हैं, क्यों? क्योंकि वे जानते हैं कि ये नाखून हमारे अंदर की पशुता की निशानी हैं। यह बार-बार बढ़ते रहेंगे और हम इन्हें बार-बार काटते रहेंगे, तभी तो इनकी वृद्धि पर अंकुश लगा सकेंगे। सच ही है कभी किसी ज़माने में बड़े नाखून काटने पर डाँटते होंगे, क्योंकि तब वे हमारे जीवन-रक्षा के उपाय थे। आज हमें इनकी हथियार के रूप में आवश्यकता नहीं है। हमारे पास अति आधुनिक और प्रभावशाली हथियार हैं। मनुष्य यह समझता है कि नाखून काट देने मात्र से वह सभ्य, मानवीय, सुसंस्कृत हो जाएगा, लेकिन लेखक के अनुसार जब तक हम हथियारों के बल पर दूसरों को मौत के घाट उतारते रहेंगे, तब तक निरे पशु ही रहेंगे, ऐसे में नाखून काटने से कुछ नहीं होगा। मनुष्य इस बात को समझ नहीं पा रहा है, इसलिए लेखक को दुख होता है और वह निराश होता है। उसे नाखूनों का बढ़ना यह याद दिलाता है कि मनुष्य अभी तक उतना सभ्य, मानवीय और सुसंस्कृत नहीं हुआ है जितना उसे होना चाहिए था। लेखक को लगता है कि नाखून का बढ़ना मनुष्य में पशुता का बढ़ना है। उसके अंदर बुराइयाँ-लोभ, लालच, क्रोध, वैर, ईर्ष्या-द्वेष नाखूनों के रूप में उसको उकसा रही हैं। नाखून काट कर मानो हम इन सब बुराइयों पर विजय पाने की कोशिश कर रहे हैं। पशुता अपने आप न तो घटती है, न मिटती है। आदमी को उसे काटने के लिए स्वयं ही कोशिश करनी पड़ती है और अपनी संतान को भी इन बुराइयों पर विजय पाने के लिए प्रशिक्षण देना पड़ता है।

क्रियाकलाप-18.2

जिस प्रकार संज्ञा और सर्वनाम की विशेषता बतलाने वाले शब्द विशेषण कहलाते हैं उसी प्रकार क्रिया की विशेषता बतलाने वाले शब्द क्रिया विशेषण कहलाते हैं। ये क्रिया विशेषण चार प्रकार के होते हैं 1. कालवाचक, 2. स्थानवाचक, 3. रीतिवाचक, 4. परिमाण वाचक

निम्नलिखित वाक्यों को पढ़िए

(i) वह परसों जाएगा। (कब जाएगा? – परसों)

(ii) शीला इधर–उधर देख रही है। (कहाँ देख रही है? – इधर–उधर)

(iii) प्रगीत धीरे–धीरे आ रहा है। (कैसे आ रहा है? – धीरे–धीरे)

(iv) वह बहुत खाता है (कितना खाता है? – बहुत)

ऊपर के वाक्यों में कब, कहाँ कैसे तथा कितना/कितने/कितनी आदि शब्दों से बने प्रश्नों के (इधर-उधर, धीरे-धीरे, बहुत) में जो शब्द आए हैं वे क्रमशः काल, स्थान, रीति तथा परिमाण वाचक क्रिया विशेषण हैं।

पाठ में आए निम्नलिखित वाक्यों को पढ़िए और उनके सामने क्रिया विशेषणों के भेद लिखिएः–

टिप्पणी

(i) आगे बढ़ा।

(ii) रोज बढ़ते हैं।

(iii) जितनी बार काट दो।

(iv) जातियाँ इस देश में अनेक आईं।

(v) समस्या को सुलझाने की अनेक प्रकार से कोशिशें कीं।

(vi) उस दिन मनुष्य की पशुता भी लुप्त हो जाएगी।

18.2.2 अंश–2

कुछ हज़ार साल पहले......................................मनुष्यता की विरोधिनी है।

आइए, अब हम दूसरे अंश पर विचार करते हैं। इस अंश में लेखक ने नाखूनों की उपयोगिता पर विचार किया है। 'कामसूत्र' के हवाले से वह बताता है कि किसी समय नाखूनों को अनेक प्रकार से सजाने–सँवारने का प्रचलन था। इसके बाद लेखक प्राणी–विज्ञानियों के मत का उल्लेख करते हुए नाखूनों को उन वृतियों में शामिल करता है जो हमारे शरीर में अपने आप अनजाने काम करती रहती हैं। इनमें से नाखूनों को लेखक ने पशुत्व का संकेत माना है।

द्विवेदी जी के अनुसार वास्तव में मनुष्य बड़ा ही कला-प्रेमी, मनोरंजन प्रेमी और शांत स्वभाव का है। हर वस्तु में वह आनंद को खोजता है। जहाँ एक ओर नाखून हमारे अंदर पशुता को बढ़ाते हैं, वहीं दूसरी ओर इतिहास में ऐसा वर्णन आया है कि पुराने समय में लोग अपने नाखूनों पर तरह-तरह की चित्रकारी करते थे। संस्कृत का प्रसिद्ध ग्रंथ है– 'कामसूत्र'। उसमें नाखूनों को अलग-अलग आकारों में काटने का वर्णन मिलता है। कोई उन्हें गोल आकार में काटता था, कोई अर्ध चन्द्रमा के, तो कोई दाँतों के आकार में काटता था। इसका अर्थ यह हुआ कि प्राचीन काल में भी आदमी अपने को तरह-तरह से सजाता–सँवारता था। लोग अपने नाखूनों को मोम से चिकना करते थे और फिर उन पर महावर, (लाल रंग का एक द्रव पदार्थ) लगाते थे। कहते हैं गौड़ देश (बंगाल का एक भाग) के लोग बड़े-बड़े नाखून रखते थे तो दक्षिण भारत के लोग छोटे नाखून पसंद करते थे। है न मज़ेदार बात, हमारे पुरखे कम कला-प्रेमी नहीं थे। प्रत्येक अंग-प्रत्यंग का श्रृंगार करना उन्हें आता था। वास्तविक बात यह है कि हमारी भारतीय संस्कृति में छोटी-से-छोटी और तुच्छ-से-तुच्छ वस्तु को भी मानवीय स्पर्श देकर महान बना दिया गया है। कहाँ वे नाखून जिनका बार-बार सिर काट दिया जाता था, कहाँ इनका इतना कलायुक्त रूप! आज भी नाखूनों को नेल पॉलिश लगाकर सजाया जाता है। लम्बे नाखून रखना फैशन है।

विभिन्न परिस्थितियों में प्राणियों की शारीरिक अवस्थाओं का अध्ययन करने वाले प्राणिविज्ञानी कहलाते हैं। लेखक के अनुसार उन्होंने यह पता लगाया है कि मनुष्य के मन की तरह मनुष्य के शरीर में भी कुछ प्रक्रियाएँ अपने आप चलती रहती हैं। हमारे

शरीर में एक ऐसा गुण भी है जो हमारे नियंत्रण के बिना अपना काम करता रहता है। जैसे एक आयु तक शरीर और उसमें शक्ति का बढ़ना, जैसे— सांस का चलना, दिल का धड़कना और भोजन का पचना इत्यादि। यह सब अपने आप चलता रहता है। इसी प्रकार नाखूनों का बढ़ना, बालों का बढ़ना, दाँतों का टूटकर दुबारा आना, पलकों के बालों का गिरना-ये सभी कार्य हमारे वश में नहीं हैं। स्वयं ही ये होती हैं ये सभी प्रवृत्तियाँ हमारे जन्म के साथ उत्पन्न होती हैं। इसलिए इन्हें सहजात वृत्तियाँ कहते है। नाखून बढ़ना भी जन्मजात प्रवृत्ति है। नाखूने के बढ़ने पर हमारा वश नहीं। अधिक-से-अधिक हम उन्हें काट सकते हैं। लेखक ने विचार करते हुए नाखूनों के बढ़ने में एक संकेत की कल्पना की है। लेखक की यह कल्पना मानवीय एवं समाज के हित में है। नाखूनों का बढ़ना पशुता की प्रवृत्ति का सिर उठाना है और उन्हें काटना पशुता को दबाकर वास्तविक मनुष्य होना है। दुःख दूर कर बेहतर जीवन की परिकल्पना के उद्देश्य से मनुष्य ने कई महत्वपूर्ण आविष्कार किए। मनुष्य ने प्रगति और विकास के नित नए कीर्तिमान स्थापित किए हैं। अब आप समझे, नाखून काटना क्यों आवश्यक है? हमारी सभ्यता, शिष्टता, संस्कृति, संपत्ति सब मनुष्य जाति के कल्याण के लिए है। हथियारों की होड़ मनुष्यता की विरोधी है।

पाठगत प्रश्न-18.2

सर्वाधिक उपयुक्त विकल्प चुनकर पूछे गए प्रश्नों के उत्तर दीजिए :

1. निम्नलिखित में से कौन-सा विकल्प गलत है–
   - (क) लाखों वर्ष पूर्व का मनुष्य – दाँत और नाखून
   - (ख) रामचन्द्रजी की वानरी सेना – पत्थर के ढेले और पेड़ की डालें
   - (ग) नाग, सुपर्ण, यक्ष, गंधर्व – लोहे के अस्त्र और घोड़े
   - (घ) देवताओं का राजा इंद्र – दधीचिं मुनि की हड्डियों से बना वज्र
2. लेखक निराश क्यों होता है?
   - (क) नाखून बढ़ने के कारण
   - (ख) नाखून काटने के कारण
   - (ग) मनुष्य द्वारा पशुता को जीत न पाने के कारण
   - (घ) नाखूनों के हथियार न रह जाने के कारण
3. सहजात वृत्तियाँ क्या होती हैं?
   - (क) औपचारिक रूप से सीखी हुई प्रवृत्तियाँ
   - (ख) नकल करके प्राप्त की गई प्रवृत्तियाँ
   - (ग) जन्म के साथ उत्पन्न होने वाली प्रवृत्तियाँ
   - (घ) समाज में साथ रहने से आने वाली प्रवृत्तियाँ

18.2.3 अंश-3

'मेरा मन पूछता है – किस ओर...तो इससे बढ़कर और क्या हो सकता है'?

इस अंश में लेखक स्पष्ट रूप से कहता है कि नाखून बढ़ना पशुता की निशानी है। इस पशुता का ही परिणाम है कि मनुष्य विनाशक अस्त्र-शस्त्र बढ़ा रहा है। लेखक यह भी कहता है कि सहजात वृत्तियाँ केवल नकारात्मक भूमिका नहीं निभातीं। हमारी पुरानी संस्कृति में बहुत कुछ ऐसा भी है जो हमें संयम सिखाकर मानवीय मूल्यों से युक्त बनाता है।

द्विवेदी जी कहते हैं कि न तो हमारे शरीर में नाखून का बढ़ना बंद होता है, न दुनिया में हथियारों की वृद्धि। हमारे अंदर की पशुता मरने के बजाय लगातार फल-फूल रही है। ऐसा इसलिए भी हुआ है कि हम अपनी प्राचीन संस्कृति में जो कुछ मूल्यवान वाक्य रचना है– उसे पहचान कर अपने जीवन में नहीं उतारते। लेखक ने भारतीय संस्कृति से उदाहरण देकर इसे स्पष्ट किया है। 15 अगस्त 1947 को जब हमें आज़ादी मिली, तब अंग्रेजी के समाचार-पत्रों में 'इंडिपेंडेंस' शब्द लिखा था और हिन्दी समाचार-पत्रों में 'स्वाधीनता दिवस' लिखा हुआ था। लेखक का कहना है कि 'इंडिपेंडेंस' का अनुवाद अनधीनता अर्थात किसी के भी अधीन न होना है, स्वाधीनता नहीं। तो सभी समाचार-पत्रों ने हिन्दी में 'स्वाधीनता', या 'स्वतंत्रता दिवस' क्यों लिखा? आप जानते हैं हर भाषा एक संस्कृति विशेष से जन्म लेती है। भारतीय संस्कृति में अनुशासन बाहर से थोपा गया अनुशासन नहीं है। हमने अपने व्यवहार को उत्कृष्ट एवं अनुशासित रखने के लिए स्वयं का बंधन स्वीकार किया है। इसीलिए स्वतंत्रता, स्वाधीनता, स्वराज्य जैसे शब्दों का प्रयोग हम करते हैं। 'इन्डिपेन्डेन्स'–अनधीनता अर्थात् किसी की अधीनता का अभाव में उच्छृंखला की प्रवृत्ति मौजूद है जबकि स्वतंत्रता, स्वाधीनता, स्वराज्य में 'स्व' का बंधन मौजूद है। भारतीय संस्कृति में उच्छृंखलता को अच्छा नहीं माना जाता। यहाँ समाज के हित में 'स्व' का अंकुश आवश्यक है। यहाँ मनुष्य के प्रत्येक व्यवहार का मूल्य इस आधार पर आँका जाता है कि वह समाज के हित में कितना है। लेखक के अनुसार यह स्व का बंधन हमारी भाषा में अनायास इसीलिए आ गया है कि यह हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग था। यह संस्कार रूप में हमारे भीतर बसा था। स्वाधीनता के बाद हमारे देश के नेता और विचारशील लोग निरंतर सत्ता के विकेन्द्रीकरण अर्थात् शासन में हर स्तर पर जनता की भागीदारी को महत्व देते हैं। इसमें भी सामूहिकता, सामाजिकता तथा अधिक-से-अधिक लोगों को सुखी देखने की कामना निहित थी। लेखक के अनुसार यह कामना भी भारतीय परंपरा का अभिन्न अंग रही है। बहुत से लोग यह मानते हैं कि जो कुछ श्रेष्ठ है, वह पश्चिम से मिला है, लेकिन इसमें लेखक इस बात का खंडन करते हुए कहता है कि हम कोई नौसिखिए नहीं हैं, हमारी परंपरा में भी बहुत पहले से अनेक श्रेष्ठ गुण हैं जिनमें से एक स्व का बंधन है। इसके साथ ही लेखक सावधान भी करता है कि पुराना सब कुछ अच्छा ही नहीं होता, इसलिए पुराने से चिपटे रहना बुद्धिमानी नहीं है लेकिन जो कुछ पुराना है– वह सब व्यर्थ है, ऐसा सोचना भी विवेकहीनता है।

मतलब यह है कि अच्छी तरह सोच समझकर, परखकर हमें किसी वस्तु या पद्धति को अपनाना चाहिए। द्विवेदी जी ने बंदरिया का उदाहरण दिया है, आपने सुना होगा कि बंदरिया अपने बच्चे के मर जाने के बाद भी उसे छाती से चिपकाए रहती है। परंतु उसकी यह अंधी ममता मनुष्य का आदर्श नहीं बन सकती। न हमें किसी का अंधानुकरण करना है, न अपनी चीज़ों की भलाई-बुराई के प्रति आँखें मूँदनी हैं। वैज्ञानिक सोच से उनका निरीक्षण-परीक्षण कर उन्हें अपनाना चाहिए। अगर हमारी भारतीय संस्कृति की कुछ बातें वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी सही सिद्ध होती हैं तो हमें उन्हें उदारतापूर्वक व सम्मानपूर्वक अपनाना चाहिए। अब तो आप समझ गए न!

18.2.4 अंश–4

जातियाँ इस देश में ....चरितार्थता का पता लगाया था।

पाठ के इस अंश में द्विवेदीजी इतिहास एवं परंपरा के उदाहरण देकर सिद्ध करते हैं कि स्व का बंधन भारतवासियों का पुराना संस्कार है। यह स्व का बंधन ही भारत के लोगों को दूसरों के सुख–दुख के प्रति संवेदनशील बनाता है। इसके साथ–साथ यह भी हुआ है कि आज मनुष्य में पशुओं की प्रवृत्ति हावी हो गई है, पर वह उसका सामना भी कर रहा है।

आप जानते ही होंगे कि प्राचीन काल से ही भारत में अनेक जातियाँ बाहर से आती रही हैं। इनमें से कुछ मारकाट-लूटपाट करने वाले थे। बहुसंख्यक ऐसे थे जो कालांतर में भारतीय संस्कृति में घुल-मिल गए। अपरिचय के भाव को मिटाने के लिए अनेक महापुरुषों ने प्रयत्न किए। यह बात हमारे महापुरुष, ऋषिगण अच्छी तरह समझ चुके थे कि धर्म अलग-अलग होते हुए भी सभी भारतीयों में कुछ समान मूल्य हैं। उनके आदर्श, परम्परा, रीति-रिवाज एक से हैं। जब हम एक स्थान पर लम्बे समय तक रहते हैं तो कुछ बातें हम सब में एक सी आने लगती हैं। सब एक संस्कृति की डोर से बंध जाते हैं। यह डोर है आदर्शों की, मूल्यों की। हमारी भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता है कि हमने अपने लिए स्वयं नियम बनाए हैं जिनका पालन करने में हम गर्व का अनुभव करते हैं।

क्या आप जानते हैं कि पशु और मनुष्य में मुख्य अंतर क्या है? पशु की जब जो इच्छा होती है, वह उसे उसी समय पूरी करता है। परंतु मनुष्य अपनी इच्छाओं को नियंत्रण में रखता है। इसीलिए वह पशु से श्रेष्ठ है। मनुष्य में संयम है और वह दूसरों के सुख-दुख को अपने हृदय में अनुभव करता है। वह दूसरों के गुणों का सम्मान करता है, उन पर श्रद्धा और विश्वास रखता है। मनुष्य में तपस्या, साधना और परिश्रम करने की क्षमता है। यही नहीं, मनुष्य में दूसरों के लिए अपने सुख को त्यागने की विशेषता भी है। इन सभी बंधनों को, आत्म-संयम के साधनों को मनुष्य ने स्वयं बनाया है। यह उस पर थोपे नहीं गए। इसी प्रकार इंसान लड़ने-झगड़ने, बिना कारण क्रोध करने आदि

टिप्पणी

बातों को अच्छा नहीं समझता। कोई भी ऐसी बात जो सत्य के विरुद्ध है, उसे मनुष्य न मन से सोचता है और न अपने किसी कर्म अथवा वचन से उसका समर्थन करता है। सत्य का पालन करना ही प्रत्येक मनुष्य का धर्म अथवा कर्त्तव्य है।

लेखक महात्मा बुद्ध के हवाले से भी कहता है कि दूसरों के दुख को अपना दुख समझकर उसके प्रति समानुभूति रखना, यही मानव मात्र का धर्म है। ये सभी नियम मनुष्य ने अपने आचरण और व्यवहार को नियंत्रित रखने के लिए स्वयं बनाए हैं ताकि वह रास्ता न भटक जाए, इंसानियत के रास्ते को छोड़कर कहीं पशुता के मार्ग पर न चला जाए। है न सुखद आश्चर्य की बात कि हमारी संस्कृति में मनुष्य को सभ्य और शिष्ट बनाने के कैसे सहज और सरल प्रयास किए गए हैं। पर हमारे नाखून आज भी बढ़ रहे हैं। आज भी पशुता, जंगलीपन हमारा पीछा नहीं छोड़ रहे हैं। परन्तु मनुष्य इस पशुता को मिटाने के लिए निरंतर संघर्षरत है।

सुख पाने के लिए आदमी ज़िंदगी भर दौड़ता रहता है। सुखों को जुटाने के लिए कितने परिश्रम और लगन की ज़रूरत है। आम जनता को सुखों की प्राप्ति के लिए कठोर परिश्रम करना पड़ता है। सत्ताधारी जनता को सुख-सुविधाएँ उपलब्ध कराने के लिए देश में वस्तुओं का अभाव बताते हैं। वे कहते हैं जब तक और कारखाने और मशीनें नहीं लगाई जाएँगी, जब तक उत्पादन पहले से कई गुना ज्यादा नहीं होगा, तब तक जनता को सुखी नहीं बनाया जा सकता। परन्तु महात्मा गांधी कहते थे कि हमें बाहरी सुखों पर कम, आंतरिक सुखों पर ज्यादा ध्यान देना चाहिए। महात्मा गांधी का कहना था कि मनुष्य को अपनी आत्मा में झाँकना चाहिए, झूठ और दिखावे से दूर रहना चाहिए। क्रोध, ईर्ष्या, जलन आदि भावों को मन से दूर रखना चाहिए। वे कहते थे कि मनुष्य को परिश्रम की बात सोचनी चाहिए। आत्मा के संतोष की बात सोचनी चाहिए। जब तक मनुष्य के मन में संतोष नहीं होगा, तब तक मनुष्य के मन में सुख नहीं आएगा। हमें परस्पर प्रेम-भाव से रहना चाहिए। हमें स्वयं पर संयम व नियंत्रण रखना चाहिए। मनमानापन पशुओं का गुण है। मनुष्य तो सोच-समझकर देश और काल के अनुसार आचरण करता है। आप जानते हैं द्विवेदी जी ने बूढ़ा किसे कहा? नहीं, जरा सोचिए तो सही उस समय हमारे स्वतंत्रता-आंदोलन के नेताओं में सबसे बड़ा और आदरणीय कौन था? समझे आप, हाँ। बिल्कुल ठीक समझे। यहाँ द्विवेदी जी ने पूरे आदर के साथ गांधी जी को वह बूढ़ा बताया है? महात्मा गाँधी की ये बातें लोगों को बहुत भाईं। वे उनके बताए सत्य और अहिंसा के रास्ते पर निडर होकर चलने लगे। परन्तु बहुत सारे लोग ऐसे भी थे जो उनके विचारों से प्रभावित नहीं थे इसलिए उनकी बातों को समझ नहीं पाते थे, उनके विचारों से भिन्न मत रखते थे। महात्मा गांधी को गोली मारकर उनकी हत्या कर दी गई। इस उदाहरण ने सिद्ध कर दिया कि हमारी पशुता मरी नहीं है वह आज भी ज़िंदा है। तभी तो हत्या, मारकाट और विनाश आज भी समाज में जीवित है। महात्मा गांधी ने अपनी विचारधारा से यह सिद्ध कर दिया कि जब तक हम अपने मन से अहिंसा व सत्य को नहीं अपनाएंगे तब तक मनुष्य जीवन सार्थक नहीं है। गांधीजी के बताए रास्ते को अपने जीवन में उतारना मनुष्यता का पर्याय है।

टिप्पणी

पाठगत प्रश्न-18.2

सर्वाधिक उपयुक्त विकल्प चुनकर पूछे गए प्रश्नों के उत्तर दीजिए :

1. नए-पुराने में से बेहतर को चुनने के लिए क्या करना पड़ता है?

   (क) जाँच-परख ☐ (ख) देख-रेख ☐

   (ग) माप-तौल ☐ (घ) काट-छाँट ☐

2. 'मरे हुए बच्चे को गोद में दबाए रखने वाली बंदरिया' का उदाहरण देने का उद्देश्य है?

   (क) मोह-ममता को बनाए रखना ☐ (ख) परंपराओं का पालन करना ☐

   (ग) रूढ़ियों का मोह त्यागना ☐ (घ) नए को शंका की दृष्टि से देखना ☐

3. मनुष्य पशु से किस बात में भिन्न है?

   (क) आहार ☐ (ख) निद्रा ☐

   (ग) संयम ☐ (घ) भय ☐

4. महात्मा गांधी ने किस बात पर अधिक बल दिया?

   (क) उन्मुक्तता पर ☐ (ख) बड़े उद्योगों पर ☐

   (ग) भौतिकता पर ☐ (घ) आत्मतोष पर ☐

18.2.5 अंश-5

ऐसा कोई दिन आ सकता है........ मनुष्य उन्हें बढ़ने नहीं देगा।

पाठ के इस अंतिम अंश में लेखक ने आशा प्रकट की है कि एक दिन ऐसा आएगा जब मनुष्य पूर्ण मनुष्य हो जाएगा अर्थात् वह अहंकार, उच्छृंखलता की प्रवृत्ति को छोड़कर प्रेम, मैत्री, त्याग जैसे सद्‌गुणों से युक्त होगा। वह सफल होने में नहीं चरितार्थ होने में विश्वास रखेगा।

प्राणिविज्ञानियों ने कहा है कि मानव शरीर के जिन अंगों की लम्बे समय से जरूरत नहीं पड़ी वे अंग धीरे-धीरे झड़ जाते हैं, जैसे एक दिन आदमी की पूँछ झड़ गई। प्राणिविज्ञानियों की इस स्थापना के आधार पर 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' के बारे में लेखक एक सुखद कल्पना करता है। उसे मानव पर भरोसा है। वह मानता है कि मानव एक दिन अपनी सभी बुराइयाँ त्याग देगा। उसे लगता है कि किसी दिन मनुष्य के नाखून बढ़ने बंद हो जाएँगे, तब शायद उसके अंदर की पशुता भी समाप्त हो जाएगी। उस दिन सारी दुनिया में शांति और प्रेम का साम्राज्य होगा। तब मनुष्य अस्त्रों का निर्माण बंद

कर देगा। पर यह है एक संभावना, ऐसा होगा या नहीं, इस बारे में कोई निश्चित घोषणा नहीं की जा सकती। जब तक ऐसा नहीं होता, तब तक यह आवश्यक है कि हम बच्चों को समझा दें कि वे अपने नाखून अवश्य काटते रहें और ये समझकर कि वे अंदर की पशुता का सिर काटकर उसे आगे बढ़ने से रोक सकें।

द्विवेदी जी ने कहा है कि विश्व की शांति के लिए आवश्यक है कि अस्त्र-शस्त्रों के बढ़ावे को रोका जाए, क्योंकि अगर अस्त्र होंगे तो लड़ाई भी अवश्य होगी। मानवता की विजय के लिए अस्त्र-शस्त्र के निर्माण को रोकना होगा। आज मनुष्य जाति के पास जो भयानक बम हैं उनके प्रयोग से सम्पूर्ण मानवता लुंज-पुंज अर्थात् अपाहिज़ हो जाएगी। मनुष्य के मन में जो नफ़रत का ज़हर भरा है वह उसे तो जलाता ही है दूसरों का भी विनाश करता है। इसलिए अपने ऊपर संयम रखते हुए हमें इस नफरत पर, घृणा पर काबू पाना है। दूसरों के विचारों, धर्मों, संस्कृतियों, रीति-रिवाजों आदि का हमें सम्मान करना चाहिए। हमारी भावी पीढ़ी, हमारे नन्हें दोस्तों के लिए यह जानना बहुत आवश्यक है कि दूसरों से छीनी हुई वस्तुएँ कभी स्थायी नहीं होती। अपने परिश्रम, अपनी मेहनत के बल पर जिन वस्तुओं को हम प्राप्त करते हैं, उन्हीं से हमारी उपलब्धियों का पता चलता है। वे मनुष्य द्वारा किए गए संघर्ष की पहचान हैं। मेहनत के फल का आनंद सबसे मीठा होता है। मनुष्य का संघर्ष सदैव अविरोधी होता है अर्थात् उसमें अपना और दूसरों का भला निहित होता है, किसी की हानि नहीं होती, इसलिए मेहनत का ही दूसरा नाम तपस्या है। तपस्या से ही वरदान मिलता है। इसलिए अपनी मेहनत से ही प्राप्त करो। दूसरों से छीनना, लूटना पशुता की निशानी है।

सफलता और चरितार्थता में अत्यंत सूक्ष्म अंतर है। सफलता का अर्थ है— व्यक्तिगत, केवल अपना या कुछ ही लोगों का लाभ, किसी वस्तु विशेष की प्राप्ति। चरितार्थता का अर्थ है— ऐसी सार्थकता, जो सम्पूर्ण मानवता के लाभ के लिए हो। मनुष्य जीवन की असली चरितार्थता उसके प्रेम भाव, मैत्री-भाव व त्याग-भाव व सहयोग में है। संपूर्ण मानव जाति की भलाई के लिए कुछ भी त्याग करना पड़े, कम है। नाखून बढ़कर हमारी जन्मजात वृत्ति पशुता के मार्ग से जीत पाना चाहते हैं। परन्तु मनुष्य अपने संयम, आत्म-नियंत्रण से नाखून का सिर काटकर अपनी चरितार्थता, अर्थात् सच्ची जीत सिद्ध करता है। अंत में लेखक मनुष्य में भरोसा प्रकट करते हुए कहता है—चाहे जो हो जाए हमें नाखूनों की बढ़त को काट-काटकर उसे अपने वश में रखना है। पशुता कभी भी मनुष्यता को हरा नहीं सकती अर्थात् संसार में केवल पशुता ही नहीं है, मनुष्यता भी है। जैसे ही पशुता सिर उठाती है, मनुष्यता उसका सामना करते हुए उसे परास्त कर देती है। यह हमेशा होता रहेगा।

पाठगत प्रश्न-18.3

सर्वाधिक उपयुक्त विकल्प चुनकर पूछे गए प्रश्नों के उत्तर दीजिए :

1. आदमी की पूँछ झड़ गई क्योंकि वह—

   (क) कम उपयोगी थी (ख) अनुपयोगी थी

   (ग) असुविधाजनक थी (घ) पशुता की निशानी थी

2. शस्त्रों की बढ़त को रोकना क्यों आवश्यक है?

   (क) देश-हित के लिए

   (ख) महत्त्वाकांक्षा के लिए

   (ग) मानव-कल्याण के लिए

   (घ) आत्मकल्याण के लिए

3. अभ्यास और तप से प्राप्त वस्तुएँ मनुष्य की महिमा को सूचित करती है, क्योंकि—

   (क) ये मनुष्य को अधिकाधिक सफल बनाती है।

   (ख) उनसे अधिक-से-अधिक उत्पादन बढ़ाया जा सकता है।

   (ग) उनसे मनुष्य बहुत शक्तिशाली बनता है।

   (घ) उनसे मनुष्य का संघर्ष व्यक्त होता है।

18.2.6 संदेश

अब तक तो आप समझ ही गए होंगे कि प्रस्तुत पाठ में लेखक क्या कहना चाहता है। एक प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ने के क्रम में लेखक मनुष्य की अब तक की विकास यात्रा को हमारे सामने स्पष्ट कर देता है। इस यात्रा में अनेक उतार-चढ़ाव हैं, संघर्ष की प्रक्रिया है। एक तरफ मनुष्य में पशुता तथा बर्बरता के लक्षण मिलते हैं, तो दूसरी तरफ इनसे मुक्ति के प्रयास भी मिलते हैं। द्विवेदी जी ऐसे मनुष्य का पक्ष लेते हैं जो मानवीय मूल्यों से युक्त, सामाजिक हो, वही मनुष्य जीवन को चरितार्थ करने वाला मनुष्य होगा। ऐसे मनुष्य की उपस्थिति हमारे इतिहास और हमारी संस्कृति तथा परंपरा में बहुत पुराने समय से रही है। महात्मा बुद्ध से लेकर गांधी तक के उदाहरण हमारे सामने हैं। द्विवेदी जी चाहते हैं कि हम ऐसे महात्माओं से प्रेरणा ले सार्थक मनुष्य हो सकते हैं।

18.2.7 भाषा-शैली

द्विवेदी जी की भाषा में तत्सम शब्दों की प्रधानता भी मिलती है। जैसे— वृहत्तर, आत्मतोषण, सहजात वृत्ति, वर्तुलाकार, नखदंतावलबी, अधोगामनी आदि। दूसरी ओर आम बोलचाल के शब्दों के प्रयोग से उन्होंने विषय को सरल, सहज एवं स्पष्ट बना दिया है। जैसे—झगड़े-टंटे, पछाड़ना, अभागे, बेहया। उसी तरह उनकी भाषा में मुहावरों और लोकोक्तियों के भी सुंदर प्रयोग हुए हैं। जैसे—लोहा लेना, कमर कसना, कीचड़ में घसीटना इत्यादि। लेखक निबंध में अनेक स्थानों पर छोटे-छोटे प्रश्न पूछकर हमारी जिज्ञासा और उत्सुकता को निरंतर बनाए रखता है। जैसे— मेरा मन पूछता है किस ओर? और उनके उत्तर विषय को आगे ही नहीं बढ़ाते बल्कि समस्या का समाधान भी

टिप्पणी

करते हैं। लेखक शब्दों के प्रयोग में अत्यंत सिद्धहस्त है। उसके कहने का ढंग अनोखा एवं निराला है।

आपने देखा निबंध में द्विवेदी जी ने एक बार भी 'महात्मा गांधी' शब्द का प्रयोग नहीं किया, फिर भी उनकी विचारधारा का गहरा प्रभाव पाठ में दिखाई देता है। कैसे? लेखक ने एक स्थान पर लिखा है– 'एक बूढ़ा था'। बस यही एक शब्द गांधी की उपस्थिति और उसके प्रति आत्मीय श्रद्धा को व्यक्त करने के लिए पर्याप्त है। द्विवेदी जी जैसे भाषा-शिल्पी ही इस प्रकार का प्रयोग कर सकते हैं। लेखक छोटे-छोटे वाक्य लिखकर अपने विचारों को व्यक्त करता है, जैसे–'अल्पज्ञ पिता बड़ा दयनीय जीव होता है', तो दूसरी ओर विषय की विवेचना करते हुए लंबे-लंबे वाक्य भी मिलते हैं। जैसे–'मनुष्य की पशुता को जितनी बार भी काट दो, वह मरना नहीं जानती।' कहीं पारिभाषिक शब्दों के संदर्भ में लेखक सूत्रात्मक शैली का प्रयोग करता है। जैसे–'सहजात वृत्तियाँ अनजान की स्मृतियों को ही कहते हैं।' लेखक की दृष्टि अत्यंत पैनी तथा गहरी है। भारतीय संस्कृति का बड़ी गहराई से उन्होंने अध्ययन किया है। जैसे– 'भारतीय चित्त आज भी 'अनधीनता' के रूप में न सोचकर 'स्वाधीनता' के रूप में सोचता है, वह हमारे दीर्घकालीन संस्कारों का फल है।' शब्दों का सटीक चयन और उनके सांकेतिक अर्थ को स्पष्ट करना द्विवेजी जी की विशेषता है। जैसे-गांधी जी की हत्या के संदर्भ में कहना कि– 'बूढ़े की बात अच्छी लगी या नहीं, पता नहीं। उसे गोली मार दी गई।'

आपने कितने ही निबन्ध पढ़े होंगे। उनमें आपको विषय का क्रमबद्ध विवरण मिलता है। सामान्यतः निबंध वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक और समस्या-प्रधान होते हैं। किन्तु निबंधों का एक प्रकार **ललित निबंध** भी है। इन निबंधों में कहानी जैसा आनंद आता है। इन निबंधों की शैली बहुत सहज, अनौपचारिक और आत्मीय होती है। ललित निबंध सृजनात्मक साहित्य की कोटि में आते हैं।

क्रियाकलाप-18.4

इस निबंध को पढ़ते हुए आपने गौर किया होगा कि इसकी भाषा और दूसरे पाठों से कुछ अलग तरह की है। किस तरह अलग है आप भाषा-शैली के अंतर्गत जान चुके हैं। इस निबंध की भाषा की एक मुख्य विशेषता यह है कि थोड़े शब्दों में अधिक बात कही गई है। यानी इसमें ऐसे शब्द हैं, जो पूरे–पूरे वाक्यांशों (अनेक शब्दों) के बदले प्रयुक्त हुए हैं। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :

अल्पज्ञ – बहुत कम जानने वाला

दयनीय – दया करने के योग्य

निर्लज्ज – जिसे लज्जा न आती हो

नखदंतावलंबी – नाखून और दाँतों पर आश्रित

नीचे कुछ ऐसे वाक्यांश या अनेक शब्द दिए जा रहे हैं, जिनके लिए इस पाठ में एक–एक शब्द का प्रयोग हुआ है, पाठ से ऐसे कुछ शब्द छाँटकर नीचे कोष्ठक में दिए गए है। उपयुक्त शब्दों का चुनाव कर वाक्यांशों के शब्द छाँटकर आगे लिखिए :

(i) जिसे सही–गलत, उचित–अनुचित की पहचान न हो ....

(ii) वे हथियार जो किसी को मारने के काम आएँ ....

(iii) बिना किसी कोशिश के ....

(iv) जिन्होंने अभी सीखना शुरू किया हो ....

(v) किसी के भी अधीन न होना ....

(vi) जन्म के साथ ही उत्पन्न होने वाला/वाली ....

(उद्‌भावित, अविवेकी, नौसिखुए, आत्म–तोषण, स्वाधीनता, सहजात, उच्छृंखलता, अवशेष, अनायास, अनधीनता, मारणास्त्र)

आपने क्या सीखा

- लेखक की यह सजीव कल्पना कि नाखूनों का बढ़ना मनुष्य की आदिम पशुवत जीवन की निशानी है और उन्हें काटना मानवीय, सभ्य एवं संस्कारित होना है।
- अधिकाधिक और विकसित अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण मनुष्य का ऐसा आचरण है जिसके मूल में पाशविक वृत्ति है।
- पशुता को हराने के लिए 'स्व' का बंधन आवश्यक है। इसीलिए भारतीय परंपरा में 'इंडिपेंडेंस' का पर्याय 'अनधीनता' न होकर स्वाधीनता, स्वतंत्रता या स्वराज्य है।
- संयम एवं दूसरों के दुख–सुख के प्रति संवेदनशील होना ही मनुष्य को पशु से श्रेष्ठ बनाता है।
- महात्मा गांधी ने बाहरी सुख एवं सफलता को छोड़कर भीतरी सुख यानी प्रेम और शांति पर बल दिया था।
- 'विश्व शांति और मानव मात्र का कल्याण हमारा लक्ष्य होना चाहिए।
- सफलता का अर्थ व्यक्तिगत उपलब्धि है जबकि चरितार्थता का तात्पर्य ऐसी सार्थकता जो दूसरों की हित–चिंता के लिए प्रेरित करती है।
- निबंध की भाषा में तत्सम शब्दों की प्रधानता होते हुए भी एक सहजता है और वह पाठक से सीधा संवाद स्थापित करती है।

टिप्पणी

योग्यता विस्तार

हजारीप्रसाद द्विवेदी का जन्म 1907 में ज़िला बलिया (उ. प्र.) में हुआ था। संस्कृत महाविद्यालय, काशी से शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद उन्होंने सन् 1930 में काशी हिंदू विश्वविद्यालय से ज्योतिषाचार्य की उपाधि प्राप्त की।

सन् 1940-50 तक द्विवेदी जी हिन्दी भवन, शांतिनिकेतन के निदेशक रहे। वहाँ उन्हें गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर और आचार्य क्षितिमोहन सेन का सान्निध्य प्राप्त हुआ। 1950 में वे काशी आए और काशी हिंदू विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग के अध्यक्ष रहे। 1960 में उन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ में हिन्दी विभागाध्यक्ष का पद ग्रहण किया।

द्विवेदी जी के लेखन की आधारभूत विशेषता है- जिजीविषा। वे अपने लेखन में उपेक्षित परंपराओं, सांस्कृतिक चेतना और जातीय परंपरा की सार्थकता को ख़ासतौर पर रेखांकित करते हैं।

उनकी महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं– अशोक के फूल, विचार और वितर्क, कल्पलता, कुटज, आलोक पर्व (निबंध संकलन); बाणभट्ट की आत्मकथा, चारुचंद्रलेख, पुनर्नवा, अनामदास का पोथा(उपन्यास), सूर साहित्य, कबीर, हिन्दी साहित्य की भूमिका, कालिदास की लालित्य योजना (आलोचनात्मक ग्रंथ) आदि।

पाठांत प्रश्न

1. लेखक के अनुसार प्राचीन काल में नाखून का बढ़ना अच्छा माना जाता होगा और अब नाखून का काटना अच्छा माना जाता है– आपकी दृष्टि में इस अंतर का कम से कम एक कारण क्या है?
2. अस्त्र-शस्त्रों के बढ़ते हुए प्रयोग ने आम आदमी के जीवन को प्रभावित किया है– इस संबंध में अपने विचार लगभग सौ शब्दों में लिखिए।
3. भारतीय संस्कृति में 'स्व' के बंधन को क्यों आवश्यक माना गया है? एक उदाहरण देते हुए अपने विचारों की पुष्टि कीजिए।
4. (क) गांधी जी किस प्रकार के सुखों को मानव-जाति के लिए श्रेष्ठ मानते थे?

   (ख) क्या आप उनसे समहत हैं, तर्क सहित उत्तर दीजिए।
5. आप ऐसे कौन से दो मानवीय मूल्य को अपनाना चाहेंगे जिससे आपका भविष्य निर्मित हो। वर्णन कीजिए।
6. पाठ में आए निम्नलिखित मुहावरों का वाक्यों में इस प्रकार प्रयोग कीजिए कि उनका अर्थ स्पष्ट हो जाए–

   (i) लोहा लेना (ii) कीचड़ में घसीटना (iii) कमर कसना

7. 'त्व' तथा 'ता' प्रत्यय वाले चार-चार शब्द लिखिए।

8. पाठ से उदाहरण देते हुए हजारीप्रसाद द्विवेदी की भाषा-शैली पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तरमाला

बोध प्रश्न

1. क, 2. ग, 3. घ,

पाठगत प्रश्न

18.1 1. ग, 2. ग, 3. ग

18.2 1. क, 2. ग, 3. ग, 4. घ

18.3 1. ख, 2. ग, 3. घ